❀ श्रीसद्गुरुदेवाय नमः ❀

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द सन्देश

श्री आनन्दपुर

जून 2017

❀ श्रीसद्‌गुरुदेवाय नमः ❀

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द सन्देश

अधिपति

श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी

श्री आनन्दपुर

सम्पादक—महात्मा ध्यान अमरानन्द

जून 2017

www.shrianandpur.org

एक प्रति रू० 4-00

वार्षिक शुल्क	5 वर्ष का शुल्क
भारत में रू० 48/-	भारत में रू० 240/-
विदेश में रू०1100/-	विदेश में रू०5000/-

विषय—तालिका

आनन्द सन्देश — जून 2017

अधिपति—श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी की ओर से प्रकाशक एवं मुद्रक महात्मा ध्यान अमरानन्द के द्वारा आनन्द प्रिंटिंग प्रेस—श्री आनन्दपुर में छपवाकर आनन्द सन्देश कार्यालय, श्री आनन्दपुर, ज़िला अशोकनगर (म० प्र०) - 473331 से प्रकाशित किया।

सम्पादक—महात्मा ध्यान अमरानन्द

श्रीसद्गुरुदेवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का मासिक

आनन्द सन्देश

श्री आनन्दपुर

जून सन् 2017 ई० सौर आषाढ़ सं० 2074 वि०

वर्ष 65] [अंक 6

अथ

श्री गुरु-वन्दना

॥ दोहा ॥

करुणा वरुणालय प्रभो, सतगुरु परम उदार ।
श्रद्धा सहित मम वन्दना, कोटि कोटि नमस्कार ॥

प्रणतपाल गुरुदेव जी, कृपासिन्धु सुखधाम ।
पावन चरण सरोज में, पुनि पुनि करूँ प्रणाम ॥

गुरु-पद-रज मस्तक धरे, करे चरणामृत पान ।
आधि व्याधि छूटे सकल, यम से पावे त्राण ॥

जीवों के कल्याण हित, प्रभु प्रकटे संसार ।
परमहंस बन आये हैं, करने जगत उद्धार ।।

निज भक्तों के काज हित, सतगुरु जग में आय।
माया काल के पाश से, रहे हैं जीव छुड़ाय ।।

महा भयानक दुख भरा, मोह रूप भव कूप।
निकसे बिन इस कूप से, जीव न हो सुख रूप ।।

काढ़ें इस भव कूप से, दे अपना आधार ।
सतगुरु कृपा से जीव यह, पावे सुक्ख अपार ।।

नाम दान सतगुरु दिया, सब दुख मेटनहार ।
जो जन सुमिरे भाव से, सहजे हो भव पार ।।

सतगुरु नाम प्रताप से, सब बाधा टल जाय ।
भव रोगों से सहज ही, जीव यह मुक्ति पाय ।।

मीत न कोई जगत में, स्वारथ का संसार ।
परम स्नेही जीव के, सतगुरु करुणागार ।।

सतगुरु सम इस जगत में, नहीं हितैषी और ।
सो सौभागी जीव है, पावे चरणन ठौर ।।

बिना कृपा गुरुदेव की, विमल विवेक न होय ।
बिन विवेक भव-सिन्धु से, पार न उतरे कोय ।।

अनन्त अनन्त हैं जीव पर, सतगुरु के उपकार ।
बन्धन काटें पलक में, हैं करुणा अवतार ।।

महिमा सुनकर आपकी, मैं भी आया द्वार ।
बिगड़ी जनम अनेक की, दीजे प्रभु सँवार ।।

मम अवगुण देखो नहीं, अपनो बिरद सँभार ।
डूब रहा भव-सिन्धु में, कर दो भव से पार ॥

'दासनदास' अनाथ की, लाज है तुम्हरे हाथ ।
अपना लो इस दीन को, हे अनाथ के नाथ ॥

शुभ सूचना

1. श्री भण्डारा—पुण्य स्मृति दिवस श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज—2 जून सन् 2017 ई० शुक्रवार

2. आषाढ़ सं० 2074 वि० की संक्रान्ति 15 जून सन् 2017 ई० गुरुवार

3. श्री व्यासपूजा (श्री गुरु-पूर्णिमा) 9 जुलाई सन् 2017 ई० रविवार

4. श्रावण सं० 2074 वि० की संक्रान्ति 16 जुलाई सन् 2017 ई० रविवार

श्री परमहंस अमृत कथा

श्री तृतीय पादशाही जी महाराज का अमर जीवन

(गतांक से आगे)

॥ दोहा ॥

श्री परमहंस अवतार जी, भक्ति मुक्ति भण्डार ।
पुनि पुनि दण्डवत् वन्दना, श्री युगल चरणार ॥
श्री परमहंस अवतार के, पद-कंज शुभ्र ललाम ।
श्री युग चरण सरोज में, कोटिन कोटि प्रणाम ॥
जीवों के कल्याण हित, लिया मनुज अवतार ।
तृतीय रूप में प्रकट हुये, परम पुरुष करतार ॥
सब सुख दाता सतगुरु, भक्तों के रक्षपाल ।
विमल भक्ति धन बख़्श कर, सेवक किये निहाल ॥
याचे तुम से बस यही, 'दासनदास' तुम्हार ।
आठ पहर हिरदे बसे, सतगुरु तुम्हरो प्यार ॥

श्री परमहंस अद्वैत मत के शाश्वत ज्योतिःस्तम्भ, भक्त-कल्पतरु, पूज्यपाद श्री परमहंस अवतार जी श्री श्री 108 श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज श्री तृतीय पादशाही जी के परम पुनीत श्री चरणारविन्दों में दासानुदास का श्रद्धा एवं

निष्ठासहित कोटि-कोटि दण्डवत्-प्रणाम है।

श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने जो हम जीवों को भक्ति एवं प्रेम का मार्ग दर्शाया और श्री दरबार की रचना कर निष्काम सेवा का जो सिलसिला चलाया, वह केवल-केवल हमारी आत्मा के कल्याण के लिए ही किया। इस पावन दरबार की सेवा करने के लिए समस्त दैवी शक्तियाँ श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के आगे हाथ जोड़े सदा उपस्थित रहती हैं। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी ने भी यही कहा है—

॥ दोहा॥

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव ।
कहै कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव ॥

कि जिस परमात्मा को पाने के लिए देव, मानव, ब्रह्मा तप करके हार गए हैं, वही सन्त महापुरुषों की सेवा करने से प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिए सद्‌गुरु सेवा ही अत्युत्तम भक्ति का साधन है जिससे मालिक की प्राप्ति सुलभ है।

श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने इसी सरल तथा अत्युत्तम भक्ति को ही हमारे सामने रखा। वे जीव कल्याण हेतु इस धरा पर अवतरित हुए थे। जीवनपर्यन्त अन्तिम क्षण तक उन्होंने जनकल्याण हेतु कार्य किये। एक बार आपने श्री प्रवचन फ़रमाये—"गुरुमुखो! तुम्हारा कल्याण ही हमें प्रिय है। वह कल्याण यों ही बातों से नहीं हुआ करता। जिसे

कल्याण प्रिय है, वह सद्गुरु से प्रेम बढ़ावे। प्रेम-पुष्पों की वाटिका को बनाने के लिए अपने में सच्चाई, पवित्रता और विचार-शुद्धि का होना परम आवश्यक है। अपने व्यवहार को मधुर बनाओ। प्रत्येक के साथ सुन्दर व भद्र व्यवहार करो।

तुम्हारी प्रबल इच्छा क्या है कि श्री सद्गुरु का ध्यान बस जावे और वे हृदय के सिंहासन पर विराजमान् हो जावें। मगर जैसे यह बाहर का सिंहासन साफ़ है, इसपर किसी प्रकार की मैल नज़र नहीं आती, उसी प्रकार मन के सिंहासन को भी निर्मल, स्वच्छ और मलिनता से शून्य कर देना चाहिये। यदि सद्गुरु आ भी जावें तो कहाँ बिठाओगे? सेवक का क्या धर्म है? यही कि सद्गुरु को समासीन करने के लिए परम स्वच्छ स्थान बनाकर उन्हें ऊँची जगह पर बिठाने की सुव्यवस्था करे। सद्गुरु की जगह विमल, पवित्र और ऊँची होनी चाहिये। यह विचार तो गुरुमुखों के दिल में होता ही है। इसलिए यह ज़रूरी है कि गुरुमुख सद्गुरु की आज्ञा व मौज में चलकर मन को दुर्गुणों से खाली करे और निर्मल विचारों को हृदय में परिपूर्ण करे। साथ में मस्तक में सद्गुरु के दर्शन करे। सद्गुरु के वचन ही जीव की अपनी पूँजी है। सद्गुरु की प्रसन्नता में ही जीव का कल्याण है। अपने कल्याण से ही दूसरों का कल्याण हो सकता है।

सद्गुरु का शब्द जीव को बहुत ऊँचा उठा ले जाना चाहता है। उनके नाम में, उनके ध्यान में और उनके प्रेम में ही जीवन है। प्रेम ही भगवान् है, भगवान् ही प्रेम है। दण्डवत्

करना इस बात का चिन्ह है कि जीव मुर्दा बन गया है। मृतक बनकर वह सद्‌गुरु के आगे विनय कर रहा होता है कि ऐ दीनबन्धु श्री सद्‌गुरुदेव जी! मैं निर्जीव हूँ, मुझमें प्राण नहीं हैं, आप मुझ को जीवन प्रदान करें। जब सद्‌गुरुदेव जी आज्ञा प्रदान करते हैं, तब सेवक उठकर खड़ा हो जाता है यानी उस सेवक को जीवन मिलता है।

सद्‌गुरु जीवन के दाता हैं। केवल वे ही जीवनमय हैं, बाकी समूचे जीव प्राणहीन हैं। कोई कितना ही माया, धन-धान्य, ऐश्वर्य का स्वामी स्वयं को समझे, वास्तव में वह मृतक है, क्योंकि वह भक्ति और नाम से विहीन है, उसमें ज़िन्दगी नहीं है। सद्‌गुरु का प्यारा शिष्य वही है जो दासभाव से भक्ति और नाम में लीन रहता है और वही ज़िन्दा कहला सकता है।

ये जितने भी भूमि, मकान व ख़ज़ाने के मालिक बने हैं, भला इनके पास कौन-सी ऐसी वस्तु है जो नाशवान् न हो? सब कुटुम्ब-परिवार, धन जो कुछ भी है सब क्षणभंगुर ही तो हैं। फिर मान अथवा गर्व किस बात का? सच्चा नाता जीव का सद्‌गुरु से ही हो सकता है, होता रहा है और हुआ है व होगा। शेष सब सम्बन्ध मिथ्या हैं। क्या लाभ लिया उस मनुष्य ने जो मायावी सामान पाकर भी अपने साथ कुछ न ले जा सका? एक ओर तो यह सौदा है और दूसरी ओर है कुल मालिक से मिलाप हो जाना। कितना अन्तर है? ज़मीन-आसमान से भी अधिक। इसलिए सद्‌गुरु के वचनों को सदा

सम्भालो। उसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करो ताकि सुख-शान्ति को प्राप्तकर सच्चे आनन्दधाम में पहुँच सको।"

इन्हीं दिनों अर्थात् सन् 1962 में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की मौज यह उठी कि 'उपासना के पवित्र स्थान' अर्थात् श्री आनन्दसर, श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के निर्माण के साथ ही 'श्री आनन्द अमृत कुण्ड' का भी उद्घाटन हो जाना चाहिये। इस स्थान के लिए धुरधाम से उतरे हुए ललित चित्र में अभी कार्य शेष था। अतः एक दिन श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी कार में विराजमान् हो श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के समीप पधारे। वहाँ पर सब गुरुमुख प्रेमियों को एकत्र कर सद्वचन फ़रमाये—"इस श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के चारों कोनों पर चार कुण्ड बनाने हैं। यह सचखण्ड से उतरा हुआ चित्र है। इनमें से केवल चरणामृत लेना होगा।" इनका शुभ नाम 'श्री आनन्द अमृत कुण्ड' फ़रमाया। तत्पश्चात् उद्घाटन भी निज करकमलों से किया। सब संगत ने हर्ष के साथ जयकारे बोले।

इसके पश्चात् वहाँ पर प्रसाद बाँटा गया। आपने उस दिन प्रेमियों को खूब प्रसाद दिया और फ़रमाया—"यह महापुरुषों का प्रसाद है अर्थात् इसमें उनकी कृपा भरी होती है। जो गुरुमुख जितना अधिक श्रद्धा एवं विश्वास से इसे ग्रहण करता है, वह उतना ही अधिक लाभ प्राप्त करता है। महापुरुषों की कृपा ही तो गुरुमुखों का जीवन है।" इस प्रकार श्री दर्शन तथा पावन वचनों का रसपान कर सभी प्रेमी

श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी के साथ निवास-स्थान पर लौट आए।

श्री मौज अनुसार यह कार्य आरम्भ हो गया। कुछ समय में चारों ओर की नींव भर दी गई तथा मध्य भाग की ज़मीन को समतल बनाकर चारों ओर की सीमा तैयार कर दी गई। यह स्थान अभी निर्माणाधीन है।

इन दिनों आप प्रेमियों को भक्ति का मार्ग दिखाकर स्वयं यहाँ से दैहिकरूप से जाने की तैयारी कर रहे थे, लेकिन आपके वचनों का रहस्य कोई भी न समझ सका। सन् 1962 में आप एक बार श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की सेवा पर विराजमान् हुए जहाँ 'श्री परमहंस विभूतियां' अर्थात् श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी, श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी व श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी की श्री मूर्तियां विराजमान् हैं। उस स्थान की ओर संकेत कर श्री तीसरी पादशाही जी ने फ़रमाया कि अब हम यहीं बैठकर भजनाभ्यास करवायेंगे। भजनाभ्यास के लिए एकान्त स्थान होना चाहिये। इसके पश्चात् कार में विराजमान् होकर आपने श्री आनन्दसर की सम्पूर्ण परिधि की परिक्रमा की।

पुनः श्रीचरणों से इस क्षेत्र की समग्र भूमि को पवित्र कर श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के ठीक पश्चिम दिशा के मध्य में श्री आनन्दसर के तट से कुछ दूरी पर पूरा हिसाब लगाकर उस स्थान पर पधारे जिस स्थान की ओर कुछ समय पूर्व

संकेत किया था। कार से नीचे उतरकर सीधे उस स्थान पर जाकर खड़े हो गए जिस स्थान पर इस समय परम पवित्र 'श्री आनन्द शान्ति भवन' स्थित है। महात्मा नित प्रेमानन्द जी उस समय साथ थे। उनको श्री आज्ञा फ़रमाई कि इस स्थान पर खूँटी गाड़ो और फिर वही वचन फ़रमाए कि हम यहाँ बैठकर अशान्त रूहों को शान्ति प्रदान किया करेंगे। आपने फ़रमाया कि यहाँ 'श्री आनन्द शान्ति भवन' बनेगा। किसी को क्या मालूम कि इसमें क्या रहस्य है। सबने यही समझा कि शायद यह तीर्थ स्थान बनाने के लिए श्री मन्दिर का निर्माण करवा रहे हैं। महापुरुषों के गूढ़ रहस्यों को कौन समझ सकता है?

ज्यों-ज्यों आप अन्तर्हित (ओझल) हो जाने की तैयारी करने लगे, त्यों-त्यों जीव-कल्याण की लगन भी अधिकाधिक बढ़ती गई। आपकी सेहत सुकोमल हो चुकी थी। 24 वर्ष अन्न त्याग करने पर भी इतना कार्य करना कोई सरल बात नहीं थी। श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी ने रूहानी जानशीनी के चार-पाँच वर्ष पश्चात् अपनी मौज के अनुसार अन्न का बिल्कुल त्याग कर दिया था। केवल आहारमात्र थोड़ा सा शाक, पालक आदि का रस ही सेवन कर लेते थे। यह तो महापुरुष ही जानते हैं कि वे ऐसा क्यों किया करते हैं। फिर भी अन्तिम क्षण तक परमार्थ के पथ पर अग्रसर होकर जन-जन को लाभान्वित करते रहे। मुखमण्डल पर ऐसी दिव्य आभा इठलाती थी कि जिसे एकटक निहारना असम्भव था।

सेवकजन डाक्टरों व वैद्यों को बुलाते। कभी-कभी सेवकजन विनय करते कि प्रभो! आप करन-करावनहार हैं, अपनी सेहत को ठीक रखें। श्री वचन हुए कि (एक प्रेमी को कर-भुजा दिखाकर) "देखो! हमें कुछ है, हमें कुछ भी नहीं।" दिव्यातिदिव्य आत्माएँ जिन जीवों का जिस रूप में कल्याण होता है, वही अपना रूप बना लेती हैं। शायद सेवकों को सेवा का सुअवसर देकर उन्हें कृतार्थ कर रहे थे। वास्तव में रहस्य भी यही था।

क्रमशः

रूहानी शब्द

1. बड़े भाग्य से पाया है,
नर-तन का यह अवसर, तेरे हाथ में आया है ।

2. चौरासी में भरम भरम,
है युगों के बाद मिला, प्राणी अनमोल जनम ।

3. इसमें प्रभु-नाम ध्या,
पल-पल करके सुमिरण, तू जीवन सफल बना।

4. यह काम भुलाना ना,
बिन सुमिरण के प्राणी, इक पल भी गँवाना ना ।

5. कहते सब सन्त यही,
करे नाम का सुमिरण जो, जग में बड़भागी वही ।

6. सन्तों के मान वचन,
सुमिरण कर ऐ 'दासा', हो जाये सफल जीवन।

कल्याण मार्ग

नाम का सुमिरण करो

(561)

"प्रभु-नाम का सुमिरण करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है, मन की सारी मलिनता धुल जाती है, मन निर्मल एवं पवित्र हो जाता है और मन की सारी भटकना, सारी अशान्ति दूर हो जाती है। नाम-सुमिरण के प्रताप से मनुष्य सहज ही संसार-सागर से पार हो जाता है। ऐसा मनुष्य इस जीवन में सुख-शान्ति को प्राप्त करता है और प्रभु के धाम में भी शोभा पाता है। इस प्रकार उसका मनुष्य-जन्म सफल हो जाता है। अन्य साधनों अथवा शुभकर्मों की तुलना में नाम का सुमिरण अतिशीघ्र तथा निश्चितरूप से फलदायी होता है। किन्तु स्मरण रहे कि प्रभु के सच्चे नाम की प्राप्ति पूर्ण सद्गुरु से ही होती है। इसलिये मनुष्य को पूर्ण सद्गुरु की शरण ग्रहण कर उनसे सच्चे नाम की प्राप्ति करनी चाहिये और उसी सच्चे नाम का सुमिरण करना चाहिये।"

व्याख्या—

मनुष्य पापकर्मों के क्षय के लिये, अपने मन को पवित्र-

निर्मल करने के लिये, सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये तथा अपना परलोक सँवारने के लिये अनेक प्रकार के साधन अथवा शुभकर्म करता है जैसे तीर्थ-स्नान, दान-पुण्य, पूजा-पाठ, कथा-श्रवण तथा हवन आदि। किन्तु सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि इनका फल इतना शीघ्र प्राप्त नहीं होता, जितना शीघ्र नाम-सुमिरण का फल मिलता है। इसीलिये सभी सन्तों महापुरुषों ने प्रभु-नाम की मुक्त कण्ठ से महिमा गायन की है और नाम-सुमिरण पर अत्यधिक बल दिया है। सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज अनेकों प्रमाण देकर नाम की महिमा करते हुए फ़रमाते हैं कि—

बिनु बाजे कैसो निरतिकारी ।।
बिनु कंठै कैसे गावनहारी ।।
जील बिना कैसे बजै रबाब ।।
नाम बिना बिरथे सभि काज ।। 1।।
नाम बिना कहहु को तरिआ ।।
बिनु सतिगुर कैसे पारि परिआ ।। 1।। रहाउ ।।
बिनु जिहवा कहा को बकता ।।
बिनु स्रवना कहा को सुनता ।।
बिनु नेत्रा का को पेखै ।।
नाम बिना नरु कही न लेखै ।। 2 ।।
बिनु बिदिआ कहा कोई पंडित ।।
बिनु अमरै कैसे राज मंडित ।।
बिनु बूझे कहा मनु ठहराना ।।

नाम बिना सभु जगु बउराना ।। 3 ।।
बिनु बैराग कहा बैरागी ।।
बिनु हउ तिआगि कहा कोऊ तिआगी ।।
बिनु बसि पंच कहा मन चूरे ।।
नाम बिना सद सद ही झूरे ।। 4 ।।

गुरुवाणी

अर्थ—"जैसे बिना वाद्यों अथवा संगीत के नृत्य शोभा नहीं देता, बिना मधुर कण्ठ के गायन शोभा नहीं देता, बिना तारों के रबाब नहीं बज सकता, इसी प्रकार प्रभु-नाम के सुमिरण के बिना सारे कारज व्यर्थ हैं।"

"सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि हे भाई कहो, नाम-सुमिरण के बिना भला कौन संसार-सागर से तर सका है? बिना सद्गुरु की शरण ग्रहण किये कौन पार हो सका है?"

"बिना जिह्वा के कौन बोल सकता है? बिना कानों के कौन सुन सकता है? बिना नेत्रों के कौन देख सकता है? इसी प्रकार नाम-सुमिरण के बिना मनुष्य का जीवन किसी लेखे में नहीं है।"

"जैसे बिना विद्या के कोई पण्डित नहीं होता, बिना अधिकार के कोई राजा के पद पर शोभा नहीं पाता, बिना ज्ञान के मन में स्थिरता नहीं आती, उसी प्रकार नाम-सुमिरण के बिना सारा संसार अशान्त एवं परेशान हुआ फिरता है।"

"जैसे वैराग्य धारण किये बिना कोई वैरागी नहीं होता,

बिना अहम् के त्याग के कोई त्यागी नहीं होता, बिना पाँचों इन्द्रियों अथवा पाँचों विकारों के वश में हुए मन नहीं मरता, उसी प्रकार नाम-सुमिरण के बिना मनुष्य सदा ही झुरता रहता अर्थात् दुःखों से घिरा रहता है।"

तात्पर्य यह कि नाम-सुमिरण से ही मनुष्य-जीवन की सार्थकता है, क्योंकि नाम-सुमिरण से ही मन को विश्रान्ति मिलती है, मनुष्य जीवन में सदा सुख-शान्ति को प्राप्त करता है और अन्त में सहज ही संसार-सागर से पार हो जाता है। यदि मनुष्य नाम-सुमिरण से वंचित है तो उसके द्वारा जीवनपर्यन्त किये गए अन्य सभी कार्य व्यर्थ हैं। वे सब कार्य किसी लेखे में नहीं हैं।

एक अन्य स्थान पर भी सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज प्रभु-नाम की महिमा करते हुए फ़रमाते हैं कि—

नामु लैत मनु परगटु भइआ ॥
नामु लैत पापु तन ते गइआ ॥
नामु लैत सगल पुरबाइआ ॥
नामु लैत अठसठि मजनाइआ ॥ 1 ॥
तीरथ हमरा हरि को नामु ॥
गुरि उपदेसिआ तत गिआन ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
नामु लैत दुखु दूरि पराना ॥
नामु लैत अति मूढ़ि सुगिआना ॥
नामु लैत परगटि उजिआरा ॥
नामु लैत छूटे जंजारा ॥ 2 ॥

नामु लैत जमु नेड़ि न आवै ।।
नामु लैत दरगह सुखु पावै ।।
नामु लैत प्रभु कहै साबासि ।।
नामु हमारी साची रासि ।। 3 ।।
गुरि उपदेसु कहिओ इहु सारु ।।
हरि कीरति मन नामु अधारु ।।
नानक उधरे नाम पुनहचार ।।
अवरि करम लोकह पतीआर ।। 4 ।।

गुरुवाणी

फ़रमाते हैं कि प्रभु-नाम का सुमिरण करने से मन में ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो जाता है, क्योंकि मन से सारे पाप दूर हो जाते हैं। नाम-सुमिरण से सभी पर्वों का और अड़सठ तीर्थों के स्नान का फल मिल जाता है। सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जीमहाराज फ़रमाते हैं कि हमारा तीर्थ तो परमात्मा का नाम ही है, सद्गुरु ने जो उपदेश दिया है उसमें यही सार तत्त्व अथवा ज्ञान की बात बतलाई है।

आगे फिर फ़रमाते हैं कि नाम-सुमिरण से दुःख दूर हो जाते हैं, मूढ़ ज्ञानवान् हो जाते हैं, अन्तर्मन में उजियारा हो जाता है और माया के सब प्रकार के जंजालों से मुक्ति मिल जाती है। नाम-सुमिरण से यमराज निकट नहीं आता, नाम-सुमिरण से प्रभु-दरबार में आदर-मान मिलता है, और शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। प्रभु-नाम का सुमिरण ही हमारी सच्ची पूँजी है।

अन्त में फ़रमाते हैं कि सद्गुरु ने अपने उपदेश में यह सार समझा दिया है कि प्रभु-नाम का सुमिरण और उसका यशोगान करना ही मनुष्य के लिये सच्चा आधार है। प्रभु-नाम का बार-बार सुमिरण करने से मनुष्य का निश्चय ही उद्धार हो जाता है। शेष जितने भी धार्मिक कृत्य हैं, वे सब तो लोकाचार ही हैं।

सभी सन्तों महापुरुषों के वचनों का यही सार है कि अन्य जितने भी शुभकर्म अथवा साधन हैं जैसे तीर्थ-स्नान, दान-पुण्य, यज्ञ, कथा-श्रवण आदि, उन सबकी अपेक्षा नाम-सुमिरण करना अतिश्रेष्ठ है। सत्पुरुष श्री गुरु रामदास जी महाराज के वचन हैं कि—

सभि तीरथ वरत जग पुंन तोलाहा।।
हरि हरि नाम न पुजहि पुजाहा ।।
हरि हरि अतुलु तोलु अति भारी।।
गुरमति जपि ओमाहा राम ।।

गुरुवाणी

अर्थात् यदि समस्त तीर्थों का दर्शन, व्रत, यज्ञ और पुण्य इकट्ठे करके तोले जायें, तो भी ये प्रभु-नाम के सुमिरण की समता नहीं कर सकते। प्रभु-नाम का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह अतुलनीय है। सद्गुरु के उपदेशानुसार नाम का सुमिरण करने से हृदय असीम प्रसन्नता से भर जाता है।

सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज के भी वचन हैं

कि—

जाप ताप गिआन सभि धिआन ॥
खट सासत्र सिम्रिति वखिआन ॥
जोग अभिआस करम ध्रम किरिआ ॥
सगल तिआगि बन मधे फिरिआ ॥
अनिक प्रकार कीए बहु जतना ॥
पुंन दान होमे बहु रतना ॥
सरीरु कटाइ होमै करि राती ॥
वरत नेम करै बहु भाती ॥
नही तुलि राम नाम बीचार ॥
नानक गुरमुखि नामु जपीऐ इक बार ॥

गुरुवाणी

फ़रमाते हैं कि कोई मंत्रों का जाप करे, कोई धूनियों से शरीर को तपाये, ज्ञान की बातें करें, देवताओं के ध्यान में लीन रहे, छः शास्त्रों तथा स्मृतियों का उपदेश करे, योगाभ्यास करे, कर्मकांडसम्बन्धी धार्मिक क्रियायें करे, सब कुछ त्याग कर वनों में घूमता फिरे, पुण्य-दान करे, अनेकों हवन करे, शरीर को थोड़ा-थोड़ा कटाये और उसे अग्नि को अर्पित करे तथा अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करे, परन्तु ये सब कर्म सद्गुरु द्वारा प्रदत्त प्रभु-नाम के सुमिरण की बराबरी नहीं कर सकते।

एक अन्य स्थान पर सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज प्रभु-नाम की महिमा इन शब्दों में करते हैं—

पुंन दान जप जेते सभ ऊपरि नामु ।।
हरि हरि रसना जो जपै तिसु पूरन कामु ।।

गुरुवाणी

अर्थात् पुण्य, दान, जप, तप आदि जितने भी धार्मिक कृत्य हैं, प्रभु का नाम उन सबसे श्रेष्ठ है। जो मनुष्य प्रभु-नाम का सुमिरण करता है, उसके सब कारज पूर्ण होते हैं अर्थात् वह सफल मनोरथ हो जाता है।

तात्पर्य यह कि अन्य सब धार्मिक कृत्य प्रभु-नाम के सुमिरण की तुलना नहीं कर सकते। सत्य तो यह है कि प्रभु-नाम का सुमिरण करने से सब कर्मों-धर्मों का फल स्वयमेव ही प्राप्त हो जाता है। इससे समस्त पापों और विकारों की मैल धुल जाती है, मन निर्मल एवं पवित्र हो जाता है, जीवन में सदा सुख-शान्ति बनी रहती है और प्रभु-धाम में आदर-सम्मान मिलता है।

किन्तु जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है कि पूर्ण सद्गुरु से प्राप्त सच्चे नाम का सुमिरण करने से ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। सत्पुरुष श्री गुरु अमरदास जी महाराज के भी इस विषय में वचन हैं कि—

राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ ।।
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ ।।

गुरुवाणी

फ़रमाते हैं कि प्रभु-नाम का सुमिरण तो सब कोई करते

हैं, परन्तु सबको अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। सद्गुरु की कृपा से प्राप्त प्रभु का नाम जब मन में बस जाता है, तभी अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

अतएव जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, जो अपने मन को निर्मल एवं पवित्र करना चाहता है, जो इस जीवन में भी सदा सुख-शान्ति चाहता है और अपना परलोक भी सँवारना चाहता है, उसे चाहिये कि पूर्ण सद्गुरु की चरण-शरण ग्रहण कर उनसे सच्चे नाम की दात प्राप्त करे और उसका पल-पल सुमिरण करे। ऐसा करने पर ही उसकी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है और उसका लोक-परलोक सँवर सकता है।

भजन

स्वर—प्यासे पंछी नील गगन में....।।

टेक—सतगुरु आये जग जीवों को भव से पार लगाने,
करके सच्चे नाम की बख़्शिश चौरासी से छुड़ाने।

1. अपने सदुपदेशों से सतगुरु मोह-निद्रा से जगाते,
नर-तन का जो मक़सद प्राणी वह सबको बतलाते,
उनके वचनों पर जो चलते जग में वही सयाने ।

2. जग में मतलब के सब संगी स्वारथ का जग सारा,
सतगुरु केवल मीत हैं साचे सदा हैं देते सहारा,
आये हैं इस जग में सतगुरु सबको सुखी बनाने ।

3. जीवों के घट में अज्ञान का छाया जो अंधियारा,
ज्ञान का दीप जगा कर सतगुरु उसमें करें उजियारा,
कलियुग में अवतार लिया है पर-उपकार कमाने ।

4. ऐसे सतगुरुदेव की 'दासा' चरण-शरण अपना ले,
करके नाम का सुमिरण प्यारे जीवन सफल बना ले,
परमहंस बन आये सतगुरु तुझको मुक्त कराने ।

? ? ? ? ?

दिव्य संस्मरण

2 जून सन् 2017 ई० शुक्रवार को हमारे परम आराध्यदेव, प्रातः स्मरणीय श्री श्री 108 श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज का पुण्य स्मृति दिवस है। इस उपलक्ष्य में आपके कुछ दिव्य संस्मरण इस प्रसंग के अन्तर्गत दिये जा रहे हैं। महापुरुषों के इन दिव्य संस्मरणों को प्रेमीजन श्रद्धापूर्वक पढ़े-सुनें। इससे महापुरुषों के चरणों में प्रेम एवं विश्वास बढ़ता है जिससे भक्ति सुदृढ़ होती है और महापुरुषों का आशीर्वाद मिलता है।

1. सन् 1930 ई० में श्री श्री 108 श्री दूसरी पादशाही जी महाराज की मौज से श्री आनन्दपुर की भूमि ली गई थी और उसे आबाद करने के लिये कई गुरुमुख परिवारों को यहाँ भेजा गया था, जिनका मुख्य प्रबन्धक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने आपको (श्री चतुर्थ पादशाही जी को) ही बनाया था। सन् 1931 ई० में श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने आप को साधु-वेष प्रदान कर आपका शुभ नाम श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी रखा।

साधु-वेष में आप कभी-कभी श्री आज्ञानुसार श्री आनन्दपुर से सीमाप्रान्त के लक्की मरवत्, डेराइस्माइलखां, टाँक, कुलाची

आदि स्थानों पर जाते थे तथा वहाँ से सेवा ले आते थे, जिससे श्री आनन्दपुर में रहने वाले शरणागतों की पूर्ति करते थे। जब आप सीमाप्रान्त में जाते तो कितने ही श्रद्धालु प्रेमी आपके चरणों में गृह पवित्र करने के लिए विनय करते। आप उनकी विनय स्वीकार कर जब उनके घर पर कृपा करते, तो वे प्रेमी अपने भाग्य मनाते थे।

एक बार आप लक्की मरवत के आश्रम 'कृष्ण द्वारा' में विराजमान् थे। एक भक्त ने आपको अपने गृह में भोजन करने के लिए प्रार्थना की। आप उसकी विनय स्वीकार कर उसके घर गये। उस भक्त के लड़के को तपेदिक (क्षयरोग, टी0 बी0) की बीमारी थी। वह इतनी उग्र हो चुकी थी कि डाक्टरों ने उसे असाध्य बताकर जवाब दे दिया था और कह दिया था कि अब इसका बचना कठिन है। वर्तमान समय की भाँति उन दिनों हर स्थान पर क्षयरोग के अस्पताल नहीं थे। डाक्टरों के जवाब देने पर परिवार वालों के दिल में उस लड़के के प्रति घृणा-सी उत्पन्न हो गई थी। वह लड़का भी अपने जीवन से निराश हो चुका था।

जब आप उस भक्त के घर पधारे तो अन्दर प्रविष्ट होते ही सबसे पहले उस लड़के पर आपकी दृष्टि गई। आप उसका कुशल-क्षेम पूछने लगे। वह लड़का आपके श्री चरणों में गिर पड़ा और उसने रोते हुए निवेदन किया—"महाराज जी! मुझे क्षयरोग है और डाक्टरों ने मुझे ला-इलाज बतलाया है।"

उसके घर के सदस्य उसके समीप जाने में भी कतराते थे, क्योंकि डाक्टरों ने उन्हें कह रखा था कि यह छूत की बीमारी है, परन्तु आप उस लड़के के पास ही चारपाई पर बैठ गए और मधुर वचन फ़रमाये—"तुम तो बिल्कुल ठीक हो। कौन कहता है कि तुम्हें टी० बी० की बीमारी है? यह तो सबके मन का भ्रम है। तुम विश्वास रखो कि तुम बिल्कुल ठीक हो।"

उस लड़के को आपके वचनों पर विश्वास हो गया। उसने विनय की—"प्रभो! आप मुझे इसी प्रकार दर्शन देने की कृपा करते रहें। मैं तो अपने जीवन की आशा छोड़ चुका था, आप ने मुझे नई आशा बँधायी है।"

सन्त महापुरुष तो करुणा के भंडार होते हैं और परोपकार करना ही उनका ध्येय होता है। आपने उस के घर पर भोजन किया और उसे आशीर्वाद देकर आश्रम 'कृष्ण-द्वारा' लौट गये। तत्पश्चात् उसके आग्रह पर आपने दो-तीन बार उसके घर पर कृपा की और सत्संग-उपदेश दिया।

दस-बारह दिनों के पश्चात् जब उस लड़के के स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ, तो आपने फ़रमाया कि अब तुम स्वयं आश्रम पर आ जाया करो। पहले तो वह लड़का यह सोच कर घबरा गया कि मैं कैसे लगभग तीन किलोमीटर पैदल चल सकूँगा, परन्तु उसके हृदय में चूँकि आपके प्रति अटूट विश्वास तथा असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी, अतएव उसने आपके वचनों को शिरोधार्य किया और धीरे-धीरे चलकर

आश्रम पर जाने लगा। पैदल चलने से उसे कुछ अन्न भी पचने लगा। जब वह आश्रम पर जाता तो आप कोई न कोई सेवा उसके ज़िम्मे लगा देते। आप तो कुछ दिन के पश्चात् वहाँ से श्री आनन्दपुर लौट आये, परन्तु उस लड़के ने आश्रम पर जाने और सेवा करने का नियम बनाये रखा। आश्रम में सेवा करते हुए दो-तीन मास बाद वह पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया।

एक दिन बाज़ार में उस लड़के को वही डाक्टर मिल गया, जिसने उसे ला-इलाज बतलाया था, डाक्टर ने लड़के को रोक कर पूछा—"क्या तुम उस लड़के के भाई हो, जिसे इस मुहल्ले में क्षयरोग हुआ था?"

लड़के ने उत्तर दिया—"जी हाँ!"

डाक्टर ने फिर पूछा—"तुम्हारे उस भाई का क्या हाल है? वह जीवित है या मर गया है?"

लड़के ने हँसते हुए उत्तर दिया—"डाक्टर साहिब! वह लड़का मैं ही हूँ।"

उसका उत्तर सुनकर डाक्टर बड़ा हैरान हुआ। वह कुछ पल तो उस लड़के की ओर देखता रहा, फिर बोला—"अरे! तुमने कहाँ इलाज करवाया है? तुम तो अब पूरी तरह स्वस्थ दिखाई देते हो।"

लड़के ने उत्तर दिया—"डाक्टरों की दवा से सन्तों महापुरुषों की दुआ कहीं अधिक प्रभावशाली होती है।" यह कहकर उसने आपके विषय में विस्तार से परिचय देते हुए

कहा कि मैं उनके आशीर्वाद से ही स्वस्थ हुआ हूँ।

उस लड़के के मुख से आपका शुभ नाम तथा आप की महिमा सुनकर डाक्टर अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसका मस्तक यह सोच कर श्रद्धा से झुक गया कि आप अवश्य ही कोई महान् विभूति हैं।

2. आप प्रायः फ़रमाया करते थे कि जो जीव हृदय में दृढ़ निश्चय से जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहे, कर सकता है, यहाँ तक कि अपने इष्टदेव मालिक को भी पा सकता है। इसके लिये केवल यह आवश्यक है कि श्रद्धा एवं विश्वास अटूट हो। जब भी प्रेमी प्रियतम को प्राप्त करने की चाह करे और उस की विनय में आर्त्त स्वर, हार्दिक वेदना तथा दृढ़ विश्वास समाहित हो, तो फिर इष्टदेव को भी विश्राम नहीं आता। प्रियतम सदा प्रेमियों के प्रेम की तारों में बँधे हुए होते हैं। नीचे लिखे वृतान्त से उपर्युक्त कथन सत्य सिद्ध हो जाता है।

आप मई-जून के मास में श्री प्रयागधाम से आनन्दधाम (पंचगनी) एकान्तवास के लिये जाया करते थे। वहाँ श्री आज्ञा के बिना कोई नहीं जा सकता था। आपका यह नियम था कि श्री प्रयागधाम में हर रविवार को भण्डारा किया करते थे। अतः आनन्दधाम के लिए आप सोमवार के दिन प्रस्थान करते तथा शनिवार के दिन पुनः श्री प्रयागधाम में कृपा करते थे। एक बार आप अपने नियम के अनुसार आनन्दधाम में विराजमान् थे।

उन्हीं दिनों एक श्रद्धालु प्रेमी भक्त तोलाराम जी, जो उद्योग-धन्धे के लिए भारत से स्पेन गए हुए थे, किसी आवश्यक कार्य से तथा सम्बन्धियों से मिलने के लिए भारत आए। उनके सम्बन्धी तथा माता-पिता देवास (मध्य प्रदेश) में रहते थे। भक्त जी के दिल में सद्गुरु-भक्ति तथा सद्गुरु-प्रेम की अत्यधिक लगन थी। वे स्पेन में भी श्री आरती-पूजा नियमपूर्वक किया करते थे। उनके दिल में श्रद्धा तथा प्रेम की एक तरंग उठी कि भारत पहुँच कर पहले श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन करके फिर घर जाना चाहिये। वे स्पेन से बम्बई पहुँचे तो उन्हें किसी प्रेमी से यह सूचना मिली कि श्री सद्गुरु दीनदयाल जी श्री प्रयागधाम में विराजमान् हैं। वे शीघ्र ही बम्बई से श्री प्रयागधाम के लिये चल पड़े।

मार्ग में भक्त जी ने मन ही मन श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरण-कमलों में अनेक बार विनती की, अनेक बार वन्दना की तथा श्री दर्शन की तीव्र अभिलाषा आँखों से प्रेमाश्रु बहाकर व्यक्त की। यह प्रेम की तार आनन्दधाम में विराजमान् श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी तक पहुँच गई, परन्तु बाह्यरूप से अभी परीक्षा शेष थी।

जिस समय भक्त तोलाराम जी श्री प्रयागधाम पहुँचे, उस दिन बुधवार था और प्रातः लगभग दस बजे का समय था। वहाँ पहुँचते ही उन्हें पता चला कि श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी आनन्दधाम को कृतार्थ कर रहे हैं और वहाँ बिना आज्ञा के कोई जा नहीं सकता। दिल से एक गहरी ठंडी सांस

निकली। महात्माजनों एवं भक्तों ने उन्हें बताया कि श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी शनिवार को यहाँ कृपा करेंगे, अतएव आपको तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। आप लम्बी यात्रा करके आये हैं, अतः भोजन करके विश्राम करें। भक्त जी ने उत्तर दिया कि श्री दर्शन किये बिना मैं भोजन कदापि नहीं करूँगा।

इधर भक्त जी श्रीदर्शन के लिये व्याकुल थे, उधर बुधवार प्रातः होते ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने निजी सेवादारों को फ़रमाया कि आज हमें श्री प्रयागधाम में एक अत्यावश्यक कार्य है, इसलिये हमें शीघ्र ही वहाँ जाना है। इस प्रकार बिना कोई सूचना दिये ही श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी कार से सायंकाल के समय श्री प्रयागधाम पहुँच गए। कार का हार्न सुनकर सभी प्रेमी पहले तो चकित हुए, फिर प्रसन्नता में झूम उठे। भक्त तोलाराम जी के हर्ष की तो कोई सीमा ही न रही। श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी ने भक्त जी को देखते ही फ़रमाया—"भक्त तोलाराम जी! क्या हाल है?"

भक्त जी ने गद्गद कण्ठ से उत्तर दिया—"अन्तर्यामी प्रभो! आप सब कुछ जानते हैं। आपकी अत्यन्त कृपा है।"

तत्पश्चात् श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी ने सभी प्रेमी गुरुमुखों के सम्मुख ये श्री वचन फ़रमाए कि—

"जब कोई प्रेमी अपने हृदय में केवल अपने इष्टदेव सद्गुरु को स्थान देकर उन्हें आतुरता से पुकारता है, तो सद्गुरु को भी प्रेमी की भावना को पूरा करने के लिए आना

ही पड़ता है। आवश्यकता है केवल सुरत को एकाग्र कर सद्‌गुरु के ध्यान में विलीन कर देने की। दृढ़ निष्ठा तथा अचल विश्वास ही प्रेमी के इष्टदेव तक पहुँचने की सीढ़ी है।"

श्री वचन श्रवण कर तथा श्री दर्शन कर भक्त तोलाराम जी ने भोजन किया तथा दो दिन श्री प्रयागधाम में ठहर कर और फिर श्री आज्ञा लेकर अपने घर के लिए रवाना हो गए।

3. सन् 1967 ई० की बात है, श्री व्यासपूजा के शुभ पर्व के पश्चात् आपने श्री प्रयागधाम जाने का प्रोग्राम बनाया। पर्व के तीन-चार दिन पहले से ही श्री आनन्दपुर तथा उसके आसपास के क्षेत्र में निरन्तर वर्षा हो रही थी। श्री आनन्दपुर से लगभग 28 मील (लगभग 45 किलोमीटर) की दूरी पर पचावली नदी है, थोड़ी-सी वर्षा होने पर भी जिसमें बाढ़ आ जाती है, पानी पुल पर आ जाता है और तब उसे पार करना कठिन हो जाता है। आपने नियमानुसार कार पर प्रस्थान किया। संगतों की एक बस भी श्री आज्ञानुसार कार के साथ-साथ चल दी।

उस समय श्री आनन्दपुर के प्रमुख महात्माजनों ने विचार किया कि तीन-चार दिन से निरन्तर वर्षा हो रही है, अतएव पचावली नदी में अवश्य ही बाढ़ आई हुई होगी। अभी श्री कार श्री आनन्दपुर के पैट्रोल पम्प पर पहुँची ही थी कि वे महात्माजन भी शीघ्रता से वहाँ पहुँचे और आपके श्री चरणों में विनय की—"प्रभो! शायद पचावली नदी में बाढ़ आई हुई हो, अतएव श्री प्रयागधाम जाने का कार्यक्रम कुछ दिनों के

पश्चात् वर्षा रुक जाने पर बना लिया जाये तो अच्छा रहेगा।"

आपने फ़रमाया—"अब हमने जाने का संकल्प कर लिया है, अतएव इस कार्यक्रम को नहीं बदल सकते। जब चले हैं तो श्री प्रयागधाम पहुँच ही जायेंगे।"

आपने ये श्री वचन फ़रमाकर सेवक को आदेश दिया कि कार आगे बढ़ाओ। श्री कार के आगे बढ़ने पर बस भी पीछे-पीछे चलने लगी। जब आपकी कार पचावली नदी के समीप पहुँची, तो नदी में पानी ख़ूब ज़ोरों से बह रहा था, परन्तु पुल पर पानी अभी नहीं आया था। आप की कार तथा साथ वाली बस ने ज्योंही पुल को पार किया, त्योंही नदी में एकदम से जलस्तर बढ़ने लगा और केवल पाँच मिनट के पश्चात् ही पानी पुल के ऊपर से गुज़रने लगा। कुछ लोग जो नदी के किनारे किसी कार्यवश खड़े थे, उन्होंने इस दृश्य को देखा। उनके मुँह से अनायास ही ये शब्द निकले कि शायद यह नदी महापुरुषों के आगमन की बाट जोह रही थी, तभी यह अपनी उछल-कूद को रोके हुए थी।

तीन-चार घंटे के पश्चात् श्री आनन्दपुर के प्रबन्धकों ने पुनः परामर्श किया कि शायद पचावली नदी में बाढ़ आ चुकी हो, अतः वहाँ जाकर श्री सद्गुरु दीन दयाल जी के श्री चरणों में वापस लौट आने के लिये विनती करनी चाहिये। पाँच-छः प्रबन्धक ट्रक पर सवार होकर जब पचावली पहुँचे, तो वहाँ क्या देखा कि यातायात रुका हुआ है। उन्होंने चारों

ओर नज़र दौड़ाई, परन्तु उन्हें कहीं भी श्री कार व बस दिखाई न दी। फिर किसी से पूछने पर पता चला कि श्रीसद्गुरुदेव महाराज जी की कार तथा श्री आनन्दपुर की बस जैसे ही पुल के पार हुईं, नदी में तुरन्त बाढ़ आ गई। यह सुन कर प्रबन्धक वापस लौट आए।

श्री प्रयागधाम पहुँचने पर आपने सेवकों को ये श्री वचन फ़रमाये—"देखो! दृढ़ संकल्प में कितनी शक्ति है। दृढ़ संकल्प से मनुष्य कठिन से कठिन कार्य को भी सरल बना लेता है। यदि मनुष्य दृढ़ संकल्प से भक्ति-मार्ग पर अग्रसर होता जाये, तो सफलता उसके पग अवश्य चूमेगी। दृढ़ संकल्प के आगे दैवी शक्तियां भी झुक जाती हैं। महापुरुषों के पास भी दृढ़ संकल्प की ही शक्ति होती है। वे जिस कार्य को आरम्भ करते हैं, उससे पग पीछे नहीं हटाते। यही कारण है कि वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो जाते हैं।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के दिव्य संस्मरण तो अनन्त हैं, पाठकों के लाभार्थ यहाँ कुछ एक ही दिये गए हैं।

कविता

बन जाऊँ तेरा फ़क़त एक तेरा,
तू स्वामी हो मेरा मैं तेरा चेरा ।

मेरे हिरदय में सतगुरु तू समाये,
तेरे बिन न कोई मुझे और भाये,
तेरा ही हो मेरे दिल में बसेरा ।

छवि तेरी बस मेरे दिल में बसी हो,
तुझ से ही हरपल सुरति जुड़ी हो,
मेरा प्रेम हरपल हो तुझ से घनेरा ।

तेरा ही हो मुझको सतगुरु सहारा,
तू ही खेवैया और तू ही किनारा,
तेरे चरणों में बीते जीवन यह मेरा ।

'दास' तेरे दर पे सतगुरु है आया,
तेरी किरपा पाने को दामन फैलाया,
निज प्रेम का करना दिल में सवेरा ।

सदुपदेश

परसन्त श्री कबीर साहिब जी के वचन हैं कि—

॥ दोहा ॥

भवसागर में यों रहो, ज्यों जल कँवल निराल ।
मनुवा व्हाँ लै राखिये, जहाँ नहीं जम काल ॥

संसार में जितने भी पदार्थ हैं, सबका अपना अलग-अलग प्रभाव है। जो पदार्थ जिस प्रकार का प्रभाव रखता है, वही उससे प्रकट होता है। उदाहरण के लिये जल में शीतलता का गुण है, अतः उससे सदा शीतलता ही मिलेगी। इसी प्रकार अग्नि का प्रभाव गर्मी देना है, अतएव उससे सदैव गर्मी ही प्राप्त होगी। अब यदि कोई जल से गर्मी और अग्नि से शीतलता की आशा रखे, तो यह उसकी अज्ञानता ही कही जायेगी।

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख, आनन्द और ख़ुशी चाहता है, परन्तु ढूँढ़ता कहाँ है? संसार के पदार्थों, माया के सामानों तथा शरीर-इन्द्रियों के भोगों में। किन्तु प्रकृति ने इन पदार्थों में सुख-शान्ति वाला प्रभाव ही नहीं भरा है, फिर इनसे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? सुख तो मनुष्य को तभी प्राप्त

होगा, जब वह सुख वाली वस्तु की ओर प्रवृत्त होगा। वह क्या है? वह है प्रभु का सच्चा नाम। जब मनुष्य संसार के सामानों और माया के पदार्थों से अपना चित्त हटाकर प्रभु के नाम के साथ जोड़ेगा, तभी उसे सच्चे आत्मिक सुख की प्राप्ति होगी।

संसार के सामानों तथा माया के पदार्थों से चित्त हटाने का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि संसार छोड़कर अन्यत्र चले जाना है। नहीं-नहीं, ऐसा कदापि नहीं है। रहना तो इसी संसार में ही है और संसार के सामानों तथा माया के प्रदार्थों से अपने जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यकता का काम भी लेना है, क्योंकि जब तक जीवन है, इनके बिना काम भी नहीं चल सकता, परन्तु इन्हें अपने चित्त में स्थान नहीं देना है।

आग से खाना बनाने तथा अन्य अनेक प्रकार के काम लिये जाते हैं। आग के बिना मनुष्य का काम नहीं चल सकता अर्थात् यह मनुष्य के लिये एक उपयोगी वस्तु है, परन्तु कब? जब इससे युक्तिपूर्वक काम लिया जाये, अन्यथा यह घर-बार जलाकर राख कर देती है।

ठीक इसी प्रकार संसार में रहते और जीवन व्यतीत करते हुए संसार के सामानों तथा माया के पदार्थों से अपनी शारीरिक आवश्यकता का काम लेना है, परन्तु युक्ति के साथ। वह युक्ति यही है कि उन्हें उपयोग में लाते हुए तथा उन्हें बरतते हुए भी उनमें अपना मन-चित्त न फँसाना; संसार में रहते हुए भी कमल-पुष्प की तरह अलिप्त रहना और अपने मन-चित्त को हर समय प्रभु-नाम (अथवा सद्गुरु के बख़्शे

हुए सार शब्द) के साथ जोड़कर रखना।

कमल का पुष्प तो आप सबने देखा ही होगा। यह सरोवरों आदि में पाया जाता है। यह पानी में से ही उत्पन्न होता है, दिन-रात पानी में ही रहता है, पानी से ही अपना आहार भी प्राप्त करता है, परन्तु फिर भी रहता पानी से अलिप्त है। पानी उसकी पंखुड़ियों को भिगो नहीं पाता। सरोवर में ज्यों-ज्यों पानी का स्तर बढ़ता है, कमल का पुष्प उतना ही ऊपर उठता जाता है। इसके अतिरिक्त उसकी पंखुड़ियों में यह गुण विद्यमान है कि पानी उन पर ठहरता ही नहीं, वह बूँदों के रूप में अलग पड़ा रहता है और पंखुड़ी के हिलते ही वह बूँद गिर जाती है। महापुरुष फ़रमाते हैं कि इसी प्रकार मनुष्य को भी कमल की भाँति ही संसार में रहते हुए और संसार के सामानों तथा माया के पदार्थों को आवश्यकता के अनुसार उपयोग में लाते हुए इन सबसे अलिप्त रहना चाहिये; इनमें अपना मन-चित्त नहीं फँसाना चाहिये। अपना मन-चित्त हर समय परमात्मा के नाम के साथ जोड़ कर रखना चाहिये।

संसार में रहते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की यह सर्वोत्तम युक्ति है। परमात्मा का नाम सुखकारी है, सुखों का भण्डार है, इसलिये जब मनुष्य मन-चित्त को इस सच्चे नाम के साथ जोड़ता है, तो फिर उसका जीवन सच्चे सुख एवं सच्चे आनन्द से भरपूर हो जाता है।

इसके विपरीत यदि संसार के सामानों तथा माया के

पदार्थों में अपने मन-चित्त को फँसा दिया, तो फिर माया के प्रभाव से मनुष्य क्योंकर बच सकेगा? माया के सामानों और संसार के भोगपदार्थों में चूँकि दुःख ही दुःख भरा हुआ है, अतएव उनसे यही कुछ प्राप्त भी होगा। यत्न एवं पुरुषार्थ करने पर माया के सामान और संसार के भोगपदार्थ आदि तो अवश्य मिल जायेंगे, परन्तु उनसे सच्चे सुख, मानसिक शान्ति की उपलब्धि मनुष्य को कदापि नहीं होगी। सुख जब भी मिलेगा, प्रभु-नाम को हृदय में बसाने से ही मिलेगा। महापुरुषों के वचन हैं कि—

तमन्ना है हर इन्सान की,
मैं हमेशा सुखी और आनन्द में रहूँ।
कभी भी दुःख मुझको न सताये,
सदा खुशियों से भरपूर रहूँ ।।
भुला कर प्रभु के नाम को,
यह सुख चैन कैसे पायेगा ।
सुख की इच्छा तभी होगी पूरी,
जब मालिक का नाम दिल में बसायेगा ।।

तात्पर्य यह कि परमात्मा के नाम में ही सच्चा सुख-आनन्द समाया हुआ है और उसी के साथ मन-चित्त जोड़ने से सच्चे सुख-आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। सत्पुरुष श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज के वचन हैं कि—

जा की राम नाम लिव लागी ।।
सजनु सु रिदा सुहेला सहजे सो कहिऐ बडभागी ।।

गुरुवाणी

फ़रमाते हैं जिस मनुष्य की प्रभु-नाम के साथ लिव लगी हुई है, मन-चित्त की तार जुड़ी हुई है, वह सज्जन पुरुष भाग्यशाली है, क्योंकि वह सहज में ही सुखी और आनन्दमग्न रहता है।

इसलिये महापुरुषों के उपदेशानुसार अपने मन-चित्त को सदा परमात्मा के नाम के साथ जोड़े रखो। ऐसा करने से तुम्हारा जीवन भी सदा सुख, आनन्द और ख़ुशी से भरपूर रहेगा और परलोक भी सुखमय बन जायेगा।



परम कल्याणकारी वचन

1–तुम कितने भी गुनाहगार हो यदि तुम हार्दिक पश्चात्ताप करते हो तो मालिक की कृपा के सम्मुख तुम्हारे अवगुण या गुनाह नहीं ठहर सकेंगे।

2–तुम अपना मूल्यांकन करो कि तुम में गुरु-चरणों का प्रेम बढ़ रहा है या मायावी मोह। सद्‌गुरु का प्रेम तुम्हें सचखण्ड में पहुँचावेगा और मायावी मोह चौरासी के चक्कर में डालेगा।

3–ग़रीबी की गदा लेकर जगत् पर विजय प्राप्त करो। जितना हो सके वाद-विवाद को छोड़ विनम्र होना सीखो।

4–यदि भक्ति में उन्नति करना चाहते हो तो सांसारिक लोगों से घनिष्ट सम्बन्ध न रखो। जगत् में साधारण व्यवहार करते हुए चलो और हृदय की तार मालिक से जोड़ो।

5–जो समय व्यतीत हो गया है उसकी चिन्ता न करो। भविष्य की चिन्ता भी न करो। वर्तमान समय में मालिक की मौज में प्रसन्नचित्त एवं सन्तुष्ट रहो।

6–मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न पहुँचाओ।

7–सद्‌गुरु की प्रसन्नता व अप्रसन्नता को दृष्टि में रखते हुए भी मनमति से चलोगे तो धोखे में रहोगे और बाद में पछताओगे।

8-मन तथा इन्द्रियों को गुरु-शब्द से नियंत्रित करो। तन-मन-धन को गुरु-सेवा में लगाकर एकान्त सेवन का लाभ उठाते हुए सन्तोष तथा धैर्य से आत्मिक उन्नति की ओर बढ़ते जाओ।

9–ऐ रूहानी राह में चलने वाले सद्‌गुरु के सेवक ! भक्तों की कथायें सुनकर तुम्हारे हृदय में भी यह अभिलाषा होती होगी कि जैसे प्रभु अपने अनन्य भक्तों के साथ हमेशा लीलाएँ करते आए हैं वैसे ही कृपा का पात्र मैं भी बन सकूँ। इसके लिए भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो ! ऐसी लीलाएँ देखने के लिए मुझे भी वह प्रेमाभक्ति, श्रद्धा और विश्वास प्रदान करो ताकि मैं आपके सत्य-रूप को पहचान सकूं।

10–एक तो मधुर बोलो, दूसरा किसी के अवग़ुण प्रकट न करो । अपने अवगुणों को सुधारो।

11–

नियम से जपो गुरु का नाम, मन से त्यागो मोह और काम ।
सेवो सद्‌गुरु आठों याम, जो पहुँचावे तुम्हें निजधाम ॥

12–एक क्रोध को त्यागो, दूसरा 'हउमैं' का बोझ उतार फेंको । सद्‌गुरु का ध्यान धारण करो तो उनसे जा मिलोगे।

13–द्वेष भाव को छोड़ दो, माया से मुख मोड़ लो ।
जहां तहां से तोड़कर, प्रेम प्रभु से जोड़ लो ॥

14–धैर्य को अपनाओ, मौज पर प्रसन्न रहो। गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना बेड़ा पार करो।

15–सिर को झुकाकर सदैव वाह-वाह गाओ और आपाभाव मिटाकर अपने प्रियतम को पाओ।

16–इच्छाओं को त्याग दो ताकि मन भटकने से बचा रहे।

17–तुम्हारा मन भूत है, इसे एक क्षण भी स्वतन्त्र न छोड़ो। 'जप ले स्वांस-स्वांस में नाम, वश में कर ले मन बलवान।'

18–सद्गुरु में विश्वास रखो, उदास कभी न होवो। वे तुम्हारा दुःख अवश्य दूर करेंगे।

19–किसी का दिल दुःखी न करो, मुख से बुरा न बोलो और सहनशीलता के गुण को हृदय में ग्रहण कर लो।

20-गर्मी-सर्दी को सहन कर सदा सादगी में रहो। भूख तथा तृप्ति में तुम मालिक के गुणानुवाद गाओ।

21–शब्द की डोरी से अपनी सुरति को बांधो। यह मार्ग फिसलने वाला है, इसलिए तुम दृढ़तापूर्वक कदम रखो।

22–संतों की संगति करो, उनकी कृपा की याचना करो; यदि उनका द्वार नहीं छोड़ोगे तो वे तुम्हें तृप्त कर देंगे क्योंकि वे स्वयं तृप्ति के भण्डार हैं।

भजन

स्वर—सुमिरा प्रभु का...।।

टेक—किया प्रभु तूने बड़ा एहसान,
बख़्शा है चरणों में मुझे स्थान ।

1. मिटे तेरी किरपा से मन की भटकन,
करूँ हर स्वाँस में नाम का सुमिरण,
बख़्शनहार तुम हो और मैं नादान ।

2. अवगुण मेरे सतगुरु कर दो माफ़,
विकारों से करो प्रभु मन मेरा साफ़,
प्रभु तुम दयालु हो और दयावान ।

3. तुम सा हितैषी नहीं कोई देखा,
फाड़े जो सहजे कर्मों का लेखा,
दर है तेरा जग में सबसे महान ।

4. तेरी प्रीत मन में हमेशा बसाऊँ,
भक्ति के रंग में मैं रंग जाऊँ,
माँगे 'दास' तुम से यही वरदान ।

श्री अमर वाणी

नोट—श्री परमहंस सद्‌गुरुदेव दीनदयाल जी श्री श्री 108 श्री चतुर्थ पादशाही महाराज जी की पुण्य स्मृति में उन्हीं के परम पावन श्री प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिये जा रहे हैं।

चितावनी

मनुष्य अपनी समझ से आम तौर पर अपनी लाभ-हानि की परख नहीं कर सकता। वह अपनी भलाई-बुराई, अपना मित्र-शत्रु अथवा सत्-असत् की पहचान करने में असमर्थ है, क्योंकि अनन्त जन्मों से माया की रचना और काल-कर्म के चक्कर में रहते और बर्तते हुए माया के संस्कार अन्दर दृढ़ हो गए हैं। उन संस्कारों के प्रभाव से बुद्धि भी मायारूप बन चुकी है। अपने आपकी पहचान भी मनुष्य को नहीं रही कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझे किधर जाना है? मेरे जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है और वह उद्देश्य पूरा हो भी रहा है अथवा नहीं? अचेत इतना है कि उसको यह अनुभव तक नहीं होता कि मैं माया के प्रभुत्व

में आ गया हूँ और उसके धोखे में गिरफ़्तार हूँ। इसका कारण यह है कि जीवात्मा माया-मोह के व्यवहार में कई जन्मों से रहने के कारण अत्यन्त मलिन और दुर्बल हो चुकी है। इसपर माया के इस कदर गहरे गिलाफ चढ़ गए हैं कि न तो लाभ-हानि की समझ रह गई है और न ही वह मित्र-शत्रु की पहचान करने के योग्य है। जब अपने आपकी पहचान नहीं रही, तो सत् और असत् का अन्तर मनुष्य क्या जान सकेगा?

माया की रचना मात्र एक धोखा है और जीवात्मा इस धोखे में इतनी अधिक आई हुई है कि जिसकी सीमा नहीं। अब यह दिन-रात अपनी भारी हानि कर रही है। सत् वस्तु की तो जीव कदर नहीं करता और असत् वस्तु के पीछे मारा-मारा फिर रहा है। जीव की ऐसी दशा अत्यन्त शोचनीय है और इसे देखकर महापुरुषों को खेद होता है।

भक्ति जो पारसमणि के सदृश है, उसकी तो मनुष्य कदर नहीं करता और माया के पदार्थ जो कौड़ियों के सदृश हैं, उनके पीछे दिन-रात दीवानों की तरह दौड़ता रहता और दुःखी एवं परेशान होता रहता है। सोना, चाँदी, हीरे, लाल और जवाहर आदि चाहे कितने ही बहुमूल्य क्यों न हों, परन्तु भक्तिरूपी पारसमणि की तुलना में इनका कुछ भी मूल्य एवं महत्त्व नहीं है। किन्तु मनुष्य की बुद्धि में इस कदर गिरावट और दुर्बलता आ चुकी है कि सत् वस्तु की

इसे अभिलाषा नहीं और असत् की इच्छा करता है। अमृत को छोड़कर विष की इच्छा कर रहा है अर्थात् परमात्मा से मिलना पसन्द नहीं करता और चौरासी लाख योनियों की कैद इसे पसन्द है। कहने का तात्पर्य यह कि जानबूझ कर जो चौरासी लाख योनियों की कैद चाहता है तो मानो इसे कैद ही पसन्द आ गई है। जिसकी यह दशा हो, उसे भला बुद्धिमान् और समझदार कौन कहेगा? कथन भी है कि—

॥ चौपाई ॥

नर तनु पाइ बिषय मन देहीं ।
पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई ।
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ॥

श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

भगवान् श्री रामचन्द्र जी महाराज अयोध्यावासियों को उपदेश करते हुए कथन करते हैं कि श्रेष्ठ मनुष्य-शरीर को पाकर जो मनुष्य विषयभोगों अर्थात् ऐन्द्रिक रसभोगों में मन को लगाता है, वह मानो अमृत को छोड़कर विष पीना स्वीकार करता है। उसे भला कौन बुद्धिमान् कहेगा जो हाथ में आई हुई पारसमणि को गँवाकर कौड़ियों के ढेर समेटता फिरे?

विचार करो कि यह संसार क्या है? यह वास्तव में

बाग के एक चित्र के समान है। यदि कोई चित्रकार अपनी कला से दीवार पर एक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक बाग बना दे जिसमें हर प्रकार के फलदार वृक्ष दिखाई देते हों जो रंग-बिरंगे फलों से लदे हों और उसे देखकर यदि किसी का जी ललचाये कि मैं फल तोड़कर खा लूँ, तो क्या यह सम्भव होगा? कदापि नहीं, क्योंकि वह वास्तव में बाग तो नहीं, चित्रकार की चित्रकला का एक सुन्दर एवं मनमोहक नमूना है। फ़कीरों का कथन है—

॥ शेअर॥

बाग़े-दुनिया बहक़ीक़त चमने-तस्वीरस्त ।
ज़ीं गुलिस्ताँ गुले-मक़सूद बदामां म तलब ॥

संसार की सुन्दर रचना वास्तव में उपवन के चित्र के सदृश है। उपवन के इस चित्र से यह इच्छा मत रख कि तेरा दामन मतलब के फूलों से भर देगा।

जिस प्रकार उपवन के चित्र से अपने दामन में मतलब के फूल भर लेने की आशा और इच्छा व्यर्थ है, वैसे ही संसार की चित्ताकर्षक और लुभावनी रचना से सुख और शान्ति रूपी फूल प्राप्त कर लेने की आकांक्षा भी व्यर्थ है। संसार का यह उपवन अर्थात् माया की रचना सुन्दर और मनमोहक अवश्य है,परन्तु यह सब दृष्टि का धोखा है। इसमें वास्तविकता नाम को भी नहीं। सुख-शान्ति को प्राप्त करने की मनुष्य की इच्छा माया की रचना से पूरी होनेवाली नहीं, इसीलिये सन्तों

का कथन है कि इस धोखे से बचो।

॥ शेअर ॥

यह चमन यूंही रहेगा और हज़ारों जानवर ।
अपनी अपनी बोलियाँ सब बोल कर उड़ जायेंगे ॥

जैसे उपवन में कई प्रकार के पक्षी होते हैं और अपनी-अपनी अलग-अलग बोलियाँ बोलते रहते हैं, उसी प्रकार संसार के इस रंगीन बाग में संसारी जीव भाँति-भाँति के पक्षी हैं जो हर समय अपनी-अपनी इच्छाओं और ऐन्द्रिक कामनाओं की बोली बोलते रहते हैं जिससे संसार के बाग में शोर मचा हुआ है। किन्तु सत्पुरुष कहते हैं कि माया का यह हल्ला-गुल्ला सब का सब यहीं रह जायेगा। पक्षी अपनी-अपनी भाँति-भाँति की बोलियाँ बोलकर उड़ जायेंगे अर्थात् इस संसार से कूच कर जायेंगे। बहुतेरा शोर मचाने पर भी संसारी जीवों की कामनायें न पूरी हुई हैं और न ही हो सकेंगी। अन्ततः उन्हें असफल एवं अपूर्ण कामनायें साथ लेकर संसार से जाना होगा। फ़कीरों का कथन ह कि—

॥ शेअर ॥

ऐ ज़ाग़ दरीं बाग़ तमाशा चे मे कुनी ।
दुनिया सराय फ़ानीस्त ग़ौग़ा चे मे कुनी ॥

ऐ काले कौए! तू इस बाग़ की मनमोहकता और सुन्दरता का तमाशा देख-देखकर अपने मन में क्या प्रसन्न हो रहा है?

तू व्यर्थ ही इस बाग को अपना घर जानकर शोर मचा रहा है। यह बाग तो एक दिन पतझड़ के आ जाने पर उजड़ जायेगा और इसके उजड़ने के साथ ही तेरा घोंसला भी नष्ट हो जायेगा। तब तू केवल हाथ ही मलता रह जायेगा।

इसी प्रकार यह संसार भी जिसे मनुष्य एक रंगीन बाग समझकर प्रसन्न हो रहा है, नाशवान् है। यहाँ मनुष्य का जीवन मात्र कुछ दिनों के लिये ही है। चार दिनों के लिये इस बाग में आवास बनाने का स्थान क्या मिल गया कि इसने बाग को ही अपनी सम्पत्ति समझ लिया और व्यर्थ ही मेरी-मेरी का शोर मचाने लगा। जीव को कौए के सदृश इसलिये कहा गया है, क्योंकि जिस प्रकार कौए का रंग काला होता है, उसी प्रकार जीव का मन भी संसार की मलिन वासनाओं और मैं-मेरी की कालिमा के कारण काला हो रहा है। कौए का आहार गन्दगी है। इसी प्रकार विषयभोगों की कामनायें हैं। उन्हें सन्तों ने गन्दगी के सदृश बतलाया है। जीवरूपी कौआ रात-दिन विषयभोगों की गन्दगी का आहार करता है और उन्हें बड़ी नेमत समझता है। व्यर्थ में शोर मचाता है कि यह संसार और संसार के सामान मेरे हैं और मैं इनका मालिक हूँ। परन्तु यह नहीं जानता कि संसार तो नश्वर है और माया के सब पदार्थ साथ देनेवाले नहीं हैं। यह सब चौरासी लाख योनियों का बीज है जिससे जीव भ्रम और अज्ञान के कारण दिल लगा बैठा है। अपनी समझ से तो वह

ठीक ही कर रहा है, परन्तु वास्तविकता की दृष्टि से देखा जाये तो यह बहुत बड़ी भूल है। जीव धोखे, भ्रम और मोह का शिकार हो गया है।

सन्त कहते हैं कि अब इस भूल का सुधार कौन करेगा? अपनी समझ से काम लेकर तो मनुष्य धोखा खा गया और उसे लाभ-हानि की परख ही नहीं रही। तो क्या संसार के सम्बन्धी और रिश्तेदार वास्तविकता की परख करा सकते हैं? कदापि नहीं। वे तो स्वयं माया के धोखे में आये हुए हैं, वे क्या वास्तविकता की पहचान करायेंगे?

।। शेअर ।।

ऊ कि ख़्वेश्तन गुम अस्त ।
दीगरां किरा राहबरी कुनद ।।

अर्थात् जो मनुष्य स्वयं भूला हुआ है, वह दूसरों को क्या मार्ग दिखला सकेगा?

जो स्वयं ही सोया हुआ है, वह किसी और को नींद से क्या जगायेगा? आरिफ़ों का कथन है कि—

।। शेअर ।।

ईं कदर दर ख़्वाबे-ग़फ़लत ख़ुफ़ताए।
उल्फ़ते-दुनिया बअक़लत कुश्ताए ।।

ऐ मनुष्य! तू प्रमाद की नींद में इस कदर मस्त होकर

खोया है कि संसार के प्यार ने तेरी बुद्धि तक को समाप्त कर दिया और तुझे फिर भी पता न चला।

संसार के असत् प्यार ने मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा डाल दिया है। यही मोह अथवा अज्ञान है जो जीव को भटका रहा है और यही प्रमाद की जड़ भी है। प्रमाद एवं अचेतनता के कारण अपना-पराया, भला-बुरा और मित्र-शत्रु कुछ भी नहीं सूझता। सन्त महापुरुष अज्ञान के इन आवरणों को दूर करते हैं। वे मनुष्य को प्रमाद-निद्रा से जगाते और वास्तविकता जतलाते हैं कि—

॥ दोहा ॥

यह दुनिया दुई रोज़ की, मत कर या से हेत ।
गुरु चरणन से लागिये, जो पूरन सुख देत ॥
प्रेम गुरु सूँ कीजिये, इक मन इक चित भाय ।
जग बादर की छाँव है, पल आवै खिन जाय ॥
मिटते सूँ मत प्रीत कर, रहते सूँ करि नेह ।
झूठे कूँ तज दीजिये, साचे में करि गेह ॥

महापुरुषों का कथन है कि यह संसार मात्र दो दिन का है। बादल की छाँव की तरह इसके आने और जाने में देर नहीं लगती। यह असत् और साथ न देनेवाला है, इसलिये इसके साथ प्रीति मत कर, अपितु मन और चित्त को पूरी तरह एकाग्र करके श्रद्धाभाव और विश्वासपूर्वक गुरु-चरणों के साथ प्रीति कर। जो वस्तु हाथ से चली जानेवाली और

मिट जानेवाली है, क्या उसके साथ दिल लगाना ठीक है? नहीं। प्रीति तो उस वस्तु के साथ करनी चाहिये जो नित्य और शाश्वत् हो। इसलिये असत् और अविश्वसनीय संसार की प्रीति छोड़कर सार वस्तु अर्थात् परमात्मा के नाम को हृदय में बसा लेना चाहिये।

कहने का अभिप्राय यह कि प्रीति सदैव सद्गुरु के चरणों के साथ होनी चाहिये और सन्त सद्गुरु की मौज तथा उनके वचन को हर समय सामने रखते हुए संसार में जीवन व्यतीत करना चाहिये। इस प्रकार माया के व्यवहार में बर्तते हुए भी माया जीव के लिये दुःख और बन्धन का कारण नहीं बन सकेगी।

।। दोहा ।।

माया है दुई भाँति की, देखी ठोक बजाय ।
एक मिलावै नाम से, एक नरक लै जाय ।।

माया को यदि महापुरुषों की आज्ञानुसार परमार्थ के मार्ग में व्यय किया जाए तो वह नाम की कमाई में सहायक होगी और परमात्मा से मिला देगी, परन्तु माया को मनमति अनुसार यदि व्यय किया जाए तो वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आशा, तृष्णा आदि विकारों की बढ़ौतरी का कारण बनेगी, जिसका परिणाम नरक है। संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब अलग-अलग ढंग से प्रयोग में लाये जाने पर अलग-अलग तरह का प्रभाव प्रकट करती हैं अर्थात्

लाभदायक भी हो सकती हैं और हानि भी पहुँचा सकती हैं। प्रत्येक वस्तु में अच्छाइयाँ भी होती हैं और बुराइयाँ भी। उदाहरण के लिये संखिया आदि विषाक्त वस्तुओं का सेवन निश्चित ही मृत्यु के मुख में ले जानेवाला है, परन्तु उसी संखिया को यदि शुद्ध करके ढंग से खाया जाये तो वह कई तरह के भयानक रोगों की अचूक औषधि सिद्ध होता है।

ठीक यही बात संसार और संसार के सम्बन्धों के विषय में भी है। संसार में मनुष्य को रहना और बरतना तो है ही, क्योंकि इसके बिना चारा ही नहीं, परन्तु मनुष्य यदि संसार को चित्त के अन्दर स्थान देता है तो उसका परिणाम चौरासी लाख योनियों की कैद और आवागमन का चक्कर है। दूसरी ओर यदि संसार को चित्त से बाहर रखा हुआ है, तो बन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है। नदी में तैरती हुई नाव यदि पानी के ऊपर होती है तो पार लगायेगी और यदि पानी नाव के अन्दर भर जाता है तो वह नाव को डुबो देने का कारण बनता है।

॥ शेअर ॥

आब दर कश्ती हलाके-कश्ती एस्त ।
आब ज़ेरे-कश्ती बायसे-पुश्ती एस्त ॥

आरिफ़ों का कथन है कि यदि पानी नाव के अन्दर होगा तो वह नाव को डुबो देगा। इसके विपरीत यदि पानी नाव के नीचे है तो वह नाव को पार लगाने में सहायक होता है।

इसी प्रकार माया और माया का प्यार यदि हृदय में है तो वह हानि का कारण है और यदि हृदय के बाहर है और सद्गुरु की मौज के अनुसार माया परमार्थ के मार्ग में व्यय की जाती है तो मुक्ति का हेतु बनती है।

वास्तव में संसार या माया किस वस्तु का नाम है? जो परमात्मा की याद से अचेत करे और उसे भुलाये तथा परमात्मा के चरणों से दूर रखे, उसी का नाम माया अथवा संसार है, जैसा कि कथन है—

॥ शेअर ॥

चीस्त दुनिया अज़ ख़ुदा ग़ाफ़िल बुदन ।
नै कमाश-ो-नुकरा-ओ-फ़रज़न्द-ो-ज़न ॥

अर्थात् घर का सामान, सोना-चांदी तथा स्त्री-पुत्र आदि—इन सबको माया या संसार नहीं कहते, अपितु इनके मोह में फँसकर परमात्मा की भक्ति से अचेत हो रहने का नाम ही संसार या माया है।

बस! संसार का लगाव और संसार की चाह ही गलत है। इसी ने मनुष्य को दुःख और परेशानी में डाल रखा है। सोचने और समझने की बात यह है कि संसार और संसार की प्रीत को दिल में बसाने का परिणाम क्या है? अच्छी तरह सोचो और अपनी अन्तरात्मा से पूछकर देखो कि संसार की जितनी भी कामनायें हैं, यही दुःख का मूल हैं या नहीं। इसलिये इन कामनाओं को बढ़ाना नहीं, अपितु कम करना

है। कामनायें जिस कदर बढ़ेंगी, उतनी ही अधिक हानि है और उतना ही दुःख बढ़ता जायेगा।

माया तो वास्तव में रूह (आत्मा) की छाया अथवा परछाई है। मनुष्य से भूल यही हुई है कि परछाई के पीछे मारा-मारा फिरता है। उदाहरण के लिये एक ओर तो मनुष्य हो और दूसरी ओर उसकी छाया हो, विचार करो कि मनुष्य की तुलना में उसकी छाया का भला क्या महत्त्व हो सकता है? कुछ भी तो नहीं। कोई व्यक्ति छाया की तो सेवा-पूजा करे, परन्तु जिसकी छाया है, उसे यदि कांटा चुभ जाए तो उसकी परवाह तक न करे अथवा यूँ समझ लो कि कोई तुम्हारी छाया का तो सम्मान करे और स्वयं तुम्हें कांटा चुभो दे या तुमपर छुरी चला दे तो क्या तुम उसे ठीक कहोगे? कदापि नहीं। इसी प्रकार भूल और भ्रम का शिकार होकर माया, जोकि आत्मा की छाया है, उसे तो आम संसारी मनुष्य सच मान रहा है और आत्मा की उसे परवाह ही नहीं।

॥ दोहा॥

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय ।
भगतां के पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥

श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं कि माया और छाया-दोनों एक जैसी वस्तुएँ हैं। जिस प्रकार छाया के पीछे भागते रहने से छाया हाथ नहीं आ सकती, परन्तु छाया की

ओर पीठ कर लेने से वह स्वयमेव पीछे चली आती है, उसी प्रकार जो माया (अथवा संसार) से भागे, उसके तो माया पीछे-पीछे छाया की तरह भागती फिरती है, परन्तु जो माया की ओर रुख़ करे और माया की कामना करे, उससे वह दूर-दूर भागती है और उसके हाथ नहीं आती।

संसारी मनुष्य की समझ में कितनी गिरावट आ चुकी है कि असल की तो परख नहीं और नकल की सेवा-पूजा में लगा हुआ है। वास्तविक वस्तु अर्थात् परमात्मा के प्रेम और सद्गुरु की भक्ति की तो चाह नहीं, परन्तु जो नकली और असत् वस्तु है, उस माया को चाहता है। यह मनुष्य को आध्यात्मिक रोग लग गया है। जिस प्रकार कुपथ्य और प्रतिकूल भोजन करने के कारण रोग बढ़ जाता है, वैसे ही गलत कामनाओं के कारण आध्यात्मिक रोग निरन्तर बढ़ता चला जा रहा है। जब किसी के शरीर में बीमारी घर कर जाती है तो उसकी भूख जाती रहती है और मुँह का स्वाद भी बिगड़ा-बिगड़ा सा रहता है। उस स्थिति में यदि उसके सामने छत्तीस प्रकार के श्रेष्ठ और स्वादिष्ट व्यंजन परोस दिये जाएँ तो भी उसे अच्छे नहीं लगते, क्योंकि उसे भूख नहीं है और मुँह का स्वाद भी बिगड़ा हुआ है।

ठीक इसी प्रकार जिस मनुष्य के दिल में मालिक से मिलने की सच्ची तड़प, प्रेम और अनुराग नहीं है तो यही कहा जा सकता है कि उसके अन्दर आध्यात्मिक रोग जड़

पकड़ चुका है जिससे उसकी भूख अथवा तड़प मिट गई है। परमात्मा का अंश होकर भी उसके दिल में अपने मालिक से मिलने की इच्छा नहीं, तो स्पष्ट है कि उसके अन्दर रोग है। सन्तों का कथन है कि—

॥ दोहा ॥

तुलसी पूरब पाप से, हरि चर्चा न सुहाय ।
जैसे ज्वर के होत ही, भोजन की रुचि जाय ॥

अर्थात् जिस प्रकार शरीर में ज्वर का प्रकोप होने से खाने-पीने को जी नहीं चाहता अर्थात् भूख मर जाती है और उस समय अच्छे से अच्छा भोज्य-पदार्थ भी कड़वा एवं कसैला अनुभव होता है, उसी प्रकार जब पूर्व जन्मों के पापकर्मों तथा मलिन संस्कारों के फलस्वरूप मनुष्य की बुद्धि मलिन हो जाती है, तब उसे भक्ति, सत्संग और भगवच्चर्चा जैसे उत्तम कर्म रुचिकर नहीं लगते।

जीवात्मा जन्मों-जन्म से रोगी है। माया के मलिन संस्कारों की परतें उसपर इस कदर चढ़ चुकी हैं कि उसकी बुद्धि पूरी तरह मलिन हो गई है। प्रतिकूल विचार और माया की कामनाओं को मनुष्य दिल में भर रहा है। चिरकाल से आत्मा को अनुकूल विचार अर्थात् भक्ति-भजन और सत्संग का आहार नहीं मिला, इसलिये वह दिन-प्रतिदिन और भी अधिक रोगी और दुर्बल होती जा रही है।

सन्त महापुरुष संसार में किसलिये आते हैं? वे आध्यात्मिक वैद्य हैं। जीव के इस आध्यात्मिक रोग का कारण वे भली प्रकार जानते हैं। इसलिये वे ही इस रोग की जाँच करके उचित उपचार कर सकते हैं। वे औषधि भी देते हैं और साथ-साथ पथ्य (परहेज़) भी बतलाते हैं। औषधि खाना आवश्यक है, परन्तु परहेज़ रखना तो उस से भी बढ़कर आवश्यक है, क्योंकि परहेज़ के बिना कोई भी औषिधि लाभ नहीं पहुँचा सकती। हकीम, वैद्य अथवा डाक्टर चाहे कितना ही योग्य क्यों न हो और उसकी दी हुई औषधि चाहे कितनी ही अचूक क्यों न हो, परन्तु परहेज़ के बिना लाभ न होगा। महापुरुषों की बख़्शी हुई औषधि तो परमात्मा का नाम (अर्थात् सार शब्द) है जो समस्त आध्यात्मिक रोगों की रामबाण औषधि है। कथन भी है कि—

सरब रोग का अउखदु नामु ॥
कलिआण रूप मंगल गुण गाम ॥

गुरुवाणी

अर्थात् परमात्मा का नाम ही सब आध्यात्मिक रोगों की औषधि है और परमात्मा के गुणानुवाद गायन करना मंगलकारी एवं कल्याण का धाम है।

इस औषधि का सेवन अर्थात् नाम की कमाई प्रत्येक रोग को दूर करेगी, परन्तु इसके साथ ही वह परहेज़ भी रखना है जो महापुरुष बतलाते हैं। दिल में जो माया की कामनायें

और संसार का मोह बस गया है, उसे दिल से निकाल फेंकना ही सत्पुरुषों का बतलाया हुआ परहेज़ है। जब तक दिल से संसार का मोह दूर न होगा, दिल में नाम का प्रकाश न हो सकेगा।

भर रहे हैं दिल में दुनियावी ख़्याल ।
आवे क्योंकर उसमें नूरे-ज़ुल जलाल ।।
चाहिये तुझको अगर वस्ले-सनम ।
दिल को खाली ग़ैर से कर यक कलम ।।

जबकि दिल में सांसारिक विचार कूट-कूटकर भर रखे हैं तो फिर उसमें नाम का प्रकाश और परमात्मा की ज्योति क्योंकर प्रकट हो? ऐ प्यारे! यदि परमात्मा का मिलाप चाहता है तो पहले अपने दिल को हर प्रकार के दूसरे-दूसरे विचारों तथा कामनाओं से खाली करके उसे पवित्र कर, तब जाकर दिल में परमात्मा का दर्शन होगा।

क्योंकि प्राकृतिक नियमानुसार दोनों वस्तुएँ एक स्थान पर नहीं रह सकतीं अर्थात् परमात्मा का प्रेम और संसार का मोह एक ही दिल में एक साथ नहीं रह सकते।

।। शेअर ।।

हम ख़ुदा ख़्वाही व हम दुनियाए-दूँ ।
ई ख़्यालस्त-ो-मुहालस्त-ो-जनूँ ।।

यदि तू परमात्मा का मिलाप भी चाहता है और साथ-

साथ बेवफ़ा (विश्वास-वंचक) संसार का प्यार भी तेरे दिल में है तो याद रख कि ऐसी दशा में परमात्मा से मिलन का विचार मिथ्या है, जिसका पूरा होना असम्भव ही नहीं, प्रत्युत इसके पूरा होने की इच्छा करना भी पागलपन है।

इसलिये करना यह है कि दिल से सांसारिक विचारों को बाहर करके इसके बदले दिल में सद्गुरु का ध्यान बसाना है। जीव स्वयं अपने लाभ-हानि को नहीं समझ सकता। महापुरुष इसीलिये संसार में आते हैं कि जीव की बुद्धि पर माया के जो पर्दे पड़ गए हैं, उन्हें दूर करके उसे वास्तविकता जतलायें और उसे आत्म-कल्याण के मार्ग पर लगायें। बस! यही सत् और असत् की, लाभ और हानि की, अपने और पराये की तथा शत्रु और मित्र की परख-पहचान कराना ही महापुरुषों के उपदेश का उद्देश्य होता है। वे मात्र इसी प्रयोजन के लिये संसार में आते हैं और वास्तविकता को परखनेवाली दृष्टि बख़्श कर जीवों का कल्याण करते हैं। जीवों की बुद्धि पर माया का जो गहरा पर्दा पड़ गया है, वह महापुरुषों की कृपा के बिना नहीं हट सकता।

महापुरुषों के उपदेशों और उनकी वाणियों के प्रकाश में इस बात का विचार करना है कि जीव तो ईश्वर का अंश है, यह माया का अंश तो नहीं। जब ईश्वर का अंश है तो फिर उसका मेल-मिलाप ईश्वर के साथ ही हो सकेगा, माया के साथ उसका मेल क्योंकर होगा? प्राकृतिक नियम है कि जो जिसका अंश होगा, वह उसी से मिलेगा। सजातीय का

सजातीय के साथ मेल हो सकता है, अन्य के साथ नहीं, जैसा कि आरिफ़ों का कथन है—

॥ शेअर ॥

कुनद हमजिंस बा हमजिंस परवाज़।
कबूतर बा कबूतर बाज़ बा बाज़ ॥

सम्बन्ध सदैव सजातीय के साथ ही बन सकता है, अन्य के साथ नहीं बन सकता। मिसाल के तौर पर कबूतर किसी दूसरे कबूतर के साथ मिलकर उड़ता है और बाज़ किसी दूसरे बाज़ के साथ। किसी ने भी कबूतर और बाज़ को इकट्ठे उड़ते न देखा होगा। इसी प्रकार मायिक पदार्थों का सम्बन्ध माया से और आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है। माया और आत्मा जब सजातीय ही नहीं, तो दोनों का आपस में मेल क्योंकर हो?

किन्तु मनुष्य भूल से आत्मा को माया के साथ मिलाना चाहता है, जो कभी भी सम्भव नहीं। इसीलिये दुःख और परेशानी की स्थिति पैदा होती है। मिट्टी व लकड़ी तथा चाँदी व सोना विजातीय हैं, इसलिये मिट्टी और लकड़ी कभी भी चाँदी और सोने के साथ मिलकर एकजान नहीं हो सकते। यदि कोई सोने को किसी अन्य वस्तु के साथ जोड़ना चाहे तो कभी सम्भव न होगा, सोना धातु से ही जुड़ेगा।

धातु मिलै फुनि धातु कउ सिफती सिफति समाइ ॥

गुरुवाणी

अर्थात् प्रत्येक धातु अपनी ही जाति की धातु से मिल सकती है और गुण गुणों में समा सकते हैं।

जैसे गुण गुणों में बर्तते और समाते हैं तथा जिस प्रकार धातु धातु से मिलकर एकरूप हो सकती है, वैसे ही आत्मा का परमात्मा से मिलाप सम्भव है, परन्तु माया से उसका मिलाप कदापि सम्भव नहीं। गुरुमुखों को परमात्मा के साथ मिलना है। माया के साथ मिलना और माया की चाह दिल में रखना अर्थात् माया का गुलाम बनकर रहना गुरुमुखों को शोभा नहीं देता।

भक्त को भगवन्त से मिलना है और भगवन्त से वह भक्ति के साधन से ही मिल सकता है।

॥ दोहा॥

हरि हरिजन दोउ एक हैं, बिब बिचार कछु नाहिं।
जल ते उपजि तरंग ज्यों, जल ही विषै समाहिं ॥

परमात्मा और परमात्मा के प्रेमी-भक्त दोनों एकरूप हैं। उनमें द्वैत अथवा भिन्नता कुछ भी नहीं। जिस प्रकार लहरें अथवा बुलबुले पानी से उत्पन्न होकर पानी में ही समा जाते हैं, वैसे ही भक्ति के प्रताप से भक्त अपने भगवन्त से मिले रहते हैं।

याद रखो कि माया के विचार और कामनायें जीवात्मा के लिये बहुत हानिप्रद हैं। जीव जो माया को चाहता है तो यह उसकी भारी भूल है और इस भूल को दूर करना है।

जीवात्मा तो ईश्वर का अंश है और जब अपने अंशी परमात्मा से मिलने की हृदय में तड़प पैदा होगी तभी सुख, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी। माया की कामनाओं से न कभी सुख मिला है और न ही मिल सकेगा।

इसलिये परमात्मा से मिलने की सच्ची चाह, लगन और मालिक का सच्चा प्रेम हृदय में पैदा करो। इस अनमोल एवं दुर्लभ मानुष-जीवन में भक्ति तथा प्रेम की सच्ची कमाई करके परमात्मा से जा मिलो और अपना जीवन सफल कर लो। मनुष्य-जीवन का समय अत्यन्त बहुमूल्य है। यह व्यर्थ न होने पाए, इसका पूरा-पूरा ध्यान रहे।

इति शुभम् भवतु

June 2017 Registered Newspaper No. MP/GNA/05/2015-17
R.No. 13072/57 Licence No. 1/2015-17 Licenced to Post without prepayment

भक्ति, प्रेम, परमार्थ, वैराग्य तथा शान्ति
का सन्देश वाहक

मासिक आनन्द-सन्देश

पढ़िये और अपनी आत्मिक प्यास बुझाइये

(1) यह मासिक पत्र श्री आनन्दपुर में दो भाषाओं हिन्दी तथा सिन्धी में प्रकाशित होता है। इसके अतिरिक्त 'SPIRITUAL BLISS' नाम से अंग्रेज़ी में भी मासिक पत्र छपता है।

(2) आनन्द सन्देश, पाठकों को प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली तारीख़ को भेज दिया जाता है। 20 तारीख़ तक अंक न मिलने पर अपने डाकखाने से पता करें, तत्पश्चात् कार्यालय को सूचित करें।

(3) आर्डर देते समय जिस भाषा में तथा जिस मास के अंक की आवश्यकता हो स्पष्ट लिखें।

(4) पत्र व्यवहार करते समय अपने चिट नम्बर का हवाला देना आवश्यक है।

(5) पता-परिवर्तन की सूचना 20 तारीख़ तक कार्यालय को अवश्य भेज दें, जिससे कि समय पर कार्यवाही की जा सके।

पता- आनन्द सन्देश कार्यालय
पो० श्री आनन्दपुर ज़िला अशोक नगर (म० प्र०)
पिन 473-331

मासिक पत्रिका प्रकाशित दिनांक 1-6-2017